श्यामशास्त्री

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

श्रीनिवास बालभारती – 107

श्यामशास्त्री

तेलुगु मूल

डॉ. बी. रजनीकांत राव

अनुवाद

डॉ. सी. पद्मावती

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2013

Srinivasa Bala Bharati - 107
(*Children Series*)

SYAMASASTRI

Telugu Version
Dr. B. Rajanikanth Rao

Translator
DR. C. Padmavathy

Editor-in-Chief
Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No.962
©All Rights Reserved

First Edition - 2013

Copies :

Price :

Published by
L.V. Subrahmanyam, I.A.S
Executive officer
Tirumala Tirupati Devasthanams
Tirupati.

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati.

प्राक्कथन

बच्चों के हृदय पुष्पों की भांति निर्मल होते हैं। उत्तम कपूर से बढ़ कर सुवासित उन के दिलों में बढिया संस्कार पैदा करना है। यदि उन में हम अच्छे संस्कार डालते हैं तो चिर काल तक आदर्श जीवन बिताने की सुस्थिर नींव पड जाती है। बचपन में संस्कार प्राप्त बच्चे भावी पीढियों के लिए समुचित मार्ग दर्शन कर सकते हैं इसलिए हमारे इन होनहार बच्चों को विरासत बने पौराणिक मूल्यों तथा इतिहास में निहित मानवता के मूल्यों का परिचय कराना अत्यंत आवश्यक है।

बिना लक्ष्य का जीवन निष्फल होता है। बच्चों को लक्ष्य की ओर प्रेरित कर उनके जीवन को सही मार्ग पर ले जाने की जिम्मेदारी बडों के ऊपर है। महान व्यक्तियों की आदर्शमय जीवनियों का परिचय करा कर उनमें प्रेरणा जगाने के उद्देश्य से 'श्रीनिवास बाल भारती' का शुभारंभ किया गया है।

इस योजना का मुख्य लक्ष्य नैतिक मूल्यों का माधुर्य को बच्चों तथा सर्वत्र फैलाने का है। हमें यह जानकर अत्यंत आनंद हो रहा है कि बच्चे तथा परिवार के सभी लोग इन पुस्तकों का स्वागत कर रहे हैं। इससे तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का मुख्य उद्देश्य कुछ हद तक सफल हो रहा है।

'श्रीनिवास बाल भारती' की योजना तैयार करके उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करवा कर कम कीमत पर सब को उपलब्ध कराने का प्रयास, करनेवाले प्रो.एस.बी रघुनाथाचार्य आभिनंदनीय हैं।

इस प्रकाशन में सहयोग देनेवाले लेखकों तथा कलाकारों के प्रति मैं अपना धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

कार्यकारी अधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

प्राक्कथन

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अगर वे बचपन में ही महोन्नत सज्जनों की जीवनियों के बारे में जानकारी लें, तो अपने भावी जीवन को उदात्त धरातल पर उज्ज्वल रूप से जीने के मौके को प्राप्त कर सकते हैं। उन महोन्नत सज्जनों के जीवन में घटित अनुभवों से हमारी भारतीय संस्कृति, जीवन में आचरणीय मूल धार्मिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्यों आदि को वे निश्चय ही सीख सकते हैं। आज की पाठशालाओं में इन विषयों को सिखाने की संभावना नहीं है।

उपरोक्त विषयों को ध्यान में रखकर तिरुमल तिरुपति देवस्थान के प्रचुरण विभाग ने डॉ.एस.वी.रघुनाथाचार्य के संपादन में स्थापित ''बाल भारती सीरीस'' के अन्तर्गत विविध लेखकों के द्वारा तेलुगु में रचित ऋषि-मुनियों व महोन्नत सज्जनों की जीवनियों से संबंधित लगभग १०० पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इनका पाठकों ने समादर किया और इसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर अन्य भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। प्रारम्भिक तौर पर इनको अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है। इनके द्वारा बच्चे व जिज्ञासु पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुँचेगा।

इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का उद्धेश्य यही है कि बच्चे पढें और बडे लोग इनका अध्ययन कर, कहानियों के रूप में इनका वर्णन करें, तद्वारा बच्चों में सृजनात्मक शक्ति को बढा दें। फल स्वरूप बच्चों को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा निश्चय ही बचपन में ही मिलेगी।

आर. श्रीहरि
एडिटर-इन-चीफ
ति.ति.देवस्थानम्

श्यामशास्त्री

श्रीविद्या

हमारे देश के मन्त्र-शास्त्र के पण्डितों से स्तुत्य विद्या जो है वह 'श्रीविद्या' के नाम से विख्यात है। त्रिमूर्तियों की प्रधान देवेरियाँ जो लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती हैं, उन्हीं की संघटित पराशक्ति श्रीदेवी है। मन्त्र-शास्त्र के विधायकों के अनुसार उस पराशक्ति की उपासना करके उस देवी के अनुग्रह से जो विद्या प्राप्त की जाती है वही श्रीविद्या है। इस देवी के उपासक महात्माओं को श्रीविद्योपासक कहते हैं। श्रीविद्या के उपासकों में प्रथम प्रातःस्मरणीय महात्मा श्री आदिशंकराचार्य हैं जो भारत के आचार्य तथा गुरुदेव के रूप में विख्यात हैं। वे महान ज्ञानी, योगी एवं भक्त थे।

संगीत का रत्न-त्रय

कर्णाटक संगीत भण्डार को अपनी कृतियों द्वारा तीन महात्माओं ने रसमय बनाया था; उनमें दो संगीतज्ञ शंकराचार्य के सयान श्रीविद्योपासक हैं। रत्न-त्रय के नाम श्यामशास्त्री, त्यागराजस्वामि और मुत्तुस्वामि दीक्षित हैं। इनमें त्यागराज ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र की नाद-ब्रह्म के रूप में उपासना की थी। अन्य दोनों पराशक्ति के उपासक थे। तीनों ने अपनी उपासना से सिद्धि प्राप्त की थी। विशेषता यह है कि इन तीनों का जन्म एक ही सदी में ई.1740-1850 में मध्य तमिलनाडू के तंजाऊर जिले तिरुवारूर में हुआ था। ऐसे महात्मा कारण-जन्मी कहलाते हैं। इस रत्न-त्रय में श्याम शास्त्री प्रथम, त्यागराज द्वितीय एवं दीक्षित तृतीय है।

श्रीविद्योपासना की 'पादुकान्त-दीक्षा श्यामशास्त्री ने दीक्षित को दी थी।

कनक कामाक्षी

''देवी श्रीकर मोक्षकर भी हैं
पुण्यभूमि भारत में स्थित अन्य पुरों में
आज काँची नगरी जगद्वन्दित है
इस स्थान को विरिंचे ने चुना था गौरी ने तप भी की थी
देवी के दर्शन की दिव्यानुभूति स्थिर होने को
विधाता ने रखा यहाँ शुभदायिनी कनक कामाक्षी को''

''कँचिकामाक्षी नाम से विराजमान हुई
काँची भूषित सिहंमध्यक् त्रिलोकायत् समाराध्य को
पंचाशत् शतलक्षपीठ निवसत् फालाक्षी कामाक्षी को
प्राँचत् शंकरमौनि वाग्विलसन प्रस्तुत श्रीविद्या को
काँची पट्टण की रानी एकाम्रेश की देवेरी को प्रणुति,''

काँचीपुर ऐसी पुण्य भूमि है जहाँ ब्रह्म ने प्राचीन काल में उग्र तपस्या की थी। प्राचीन भारत में मोक्ष प्रदायक माने गए जो सप्तपुरों-अयोध्या, माया, काशी, काँची, अवन्तिका, मधुरा और पूरी में काँची भी एक है। इस पुर में ब्रह्मदेव की उग्र तपस्या से संतुष्ट होकर लोकमाता अपने दिव्यमंगल रूप से प्रत्यक्ष हुई। माना जाता है कि ब्रह्मा ने स्वयं मांदिर का निर्माण कराकर सुवर्ण प्रतिमा को अर्चामूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार काँचीपुर में जो सुवर्ण मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी है वह आज आदिशक्ति 'कनक कामाक्षी' की है।

श्रीचक्र की स्थापना

उक्त गाथा ऐतिहासिकता से अतीत पौराणिक युग की है। ऐतिहासिक युग में प्रसिद्ध मान्यता है कि श्रीशंकराचार्य ने माता के मंदिर का जीर्णोद्धरण करके पराशक्ति के पाद-पीठ में श्रीचक्र की स्थापना की है। श्रीचक्र त्रिकोणाकृति में अष्ट-दलों से परिवेष्टित है जिस के विभिन्न त्रिकोणाकृतिक कक्षाओं में देवी-मन्त्र के बीजाक्षर लिखे गए हैं; मन्त्र-शास्त्र की विधियों से इन बीजाक्षरों में दिव्य-शक्ति का आवाहन किया जाता है। प्रतीति है कि भारत में प्रसिद्ध आदि-शक्ति के पीठों में श्रीशंकराचार्य ने श्रीचक्रों की स्थापना की है।

मंदिर से अलौकिक संबंध

श्री आदि शंकराचार्य ने काँचीपुर के पुण्य-क्षेत्र में स्थापित आदि-शक्ति कामाक्षी देवी की नित्य-अर्चनादि के लिए श्यामशास्त्री के पूर्वजों में से वेद-वेदान्त पारंगत एक ब्राह्मणोत्तम को नियुक्त किया था। वे द्रविड-ब्राह्मण थे जो उत्तर भारत के थे और कालांतर में वे कर्नूल के कंभं जिले में बस गए थे। यह ऐतिहासिक तथ्य श्रीसुब्बराम दीक्षित से लिखा हुआ है। इस प्रकार प्राचीन काल से करीब दस सदियों तक अर्चकत्व की परंपरा से शास्त्री के वंशजों और कनक कामाक्षी का अलौकिक संबंध अविच्छिन्न रहा है। कमाक्षी अम्मा ने अपने भक्त और वाग्गेयकार शास्त्री द्वारा संस्कृत, तेलुगु और तमिल भाषाओं में असंख्यक गेयों का गायन कराया और उनको स्वयं अंकित पाया।

वरालि-राग-चापु ताल

पल्लवि।। कनक कामाक्षि मेरा पार उतारो
अनुपल्लवि।। सामगानलोल हे माते सुशीले तामस छोड आव
।।कामाक्षी।।
स्वरसाहित्यं।। हे देवि मेरी विनती सुनो
तुम ने मेरा सर्वस्व समझा
हे माता करुणा करो शीघ्र कनक कामाक्षी''
चरणं।। श्यामकृष्ण परिपालिके (अम्ब) शुक
श्यामले शिवशंकरि शूलिनी सदाशिव की रानी
विशाल तरुणि शाश्वत रूपिणि ।।कामाक्षी।।

तिरुवारूर में

सन् 1565 के तल्लिकोट युद्ध में भहमिनी सुल्तानों ने विजयनगर पर दुराक्रमण किया। वह राज्य छिन्नाभिन्न हो गया। उस समय काँचीपुर उस राज्य के अधीन रहने के कारण उस पर भी युद्ध का प्रभाव पडा। कनक कामाक्षी अम्मा की प्रतिमा तथा अर्चन संबंधी वस्तु-सामग्री को लेकर मंदिर के अर्चक ऐसे प्रदेश की ओर पलायन हो गए जहाँ सुरक्षा की सुविधा मिलें। इस अन्वेषण में वे अरण्यों और प्रदेशों को पारकर चेंजि-किले के शासक के दरबार में पंद्रह सालों तक रहे। अनंतर उदयारपालें जमींदार के आह्वान से वहाँ कई सालों तक रहे। परंतु वहाँ उनकी अर्चना और निवास स्थिर नहीं हो सके। वे फिर काँचीपुर की ओर निकले। मार्ग में विजयपुर,

नागूर, मादापुर, सिक्किल आदि गाँवों में मजिली डालते डालते तीस साल बाद तंजाऊर मण्डल के तिरुवारूर क्षेत्र में प्रवेश कर सके।

दिव्यमाता का वरदान

तिरुवारूर में चालीस वर्ष बाद लौट आए। वहाँ के त्यागराजस्वामी के मंदिर के विशाल आवरण में एक मण्डप बनाकर उस में कनक कामाक्षी की प्रतिष्ठा की। अर्चक परिवार बारी बारी से अर्चकत्व अपनाते थे। उन भाइयों में जब विश्वनाथ शास्त्री अर्चक थे तब दिव्य जननी के वरदान के रूप में शास्त्री की पत्नी को एक सुपुत्र का जन्म हुआ था। शास्त्री का जन्म तो तिरुवारुर में हुआ परंतु परिवार उसके 19 साल तक ही उस शहर में रहा।

तंजाऊर में

श्यामशास्त्री के पिता विश्वनाथ शास्त्री ने हैदरअली के आक्रमणों से दिव्य जननी और उसके आभरणादि की रक्षा के लिए तंजाऊर के राजा तुलजाजी से सलाह की और उनके आह्वान पर तंजाऊर को अपना परिवार ले गया। वहाँ के कोंकणीश्वर के मंदिर में कामाक्षी अम्मा की प्रतिमा रखकर पूजा-पाठ किया। पांच सालों बाद राजा ने जो प्रत्येक मंदिर अम्मा के लिए बनवाया था उसमें कनक कामाक्षी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। राजा ने कुम्भाभिषेक कराकर अर्चक विश्वनाथ शास्त्री को अग्रहारों और जमीनों को दान दिया।

एक सौ अस्सी सालों के पूर्व तंजाऊर के मंदिर में प्रतिष्ठित कनक कामाक्षी ने श्यामशास्त्री से अद्वितीय राग-रागिणियों से समृद्ध गेयों का गायन कराया है। उदा-

राग धन्यासि-त्रिपुट ताल

''मीनलोचनी दया करो दीनजनावना अम्बा
गानविनोदिनी अम्बा तुम्हारे सम कोई नही जग में
मेरी जन्म कारिणी सुनो मेरी दुहाई
पन्नगभूषण की रानी धरा में तुम्हारे सिवा कोई नही कनकवल्ली अम्बा''

ऐतिहासिक भूमिका- -सन् 1740 से पाँच सालों की व्यवधि में तीन महान संगीतज्ञों का जन्म तिरुवारूर में हुआ था जिनके कारण दक्षिण की संगीत कला में बृहत्तर परिवर्तन हुआ। इन तीनों की महत्ता समझने के लिए उन दिनों की राजनीतिक स्थिति से परिचय पाना आवश्यक है।

विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद रायल-वंशज दुर्बल होकर वेलूर और चन्द्रगिरि में रहकर शासन करने लगे। ये राजा तंजाऊर और मधुरा के नायक राजाओं के समकक्ष शक्तिशाली नहीं थे। अतः नायक राजा अपनी असमान प्रतिभा से स्वतंत्र राज्य की स्थापना करके रायल साम्राज्य की तरह प्रख्यात हो गए। इनके दरबार में काव्य और कलाओं को प्रोत्साहन दिया गया। परंतु मराठों के आक्रमणों से नायकराजाओं का पतन हो गया।

प्रजा का आदरण लुप्त हो गया

तंजाऊर के नायकराजाओं ने समझ लिया कि साहित्य संगीत आदि कलाओं के पोषण से प्रजा का आदरण पा सकते हैं। इसलिए

सामंत राजाओं और विविध संघों के ज्ञानी वृद्धों को गौरव दिया। उनकी सहमति से कई कवियों, संगीतज्ञों, नाट्यकारों का पोषण भार अपने ऊपर लिया। इसी का फल यह है कि उन्होने सभी भारतीय भाषाओं में ग्रंथों को लिखवाया जो आज भी तंजावूर के प्रसिद्ध 'सरस्वती महल' में सुरक्षित हैं। नृत्य नाटक, ललितकलाओं, यक्षगानों आदि को समृद्ध किया।

विशृखल जीवन

इन सुगुणों के साथ उनके दरबारों पर कालांतर में मराठा के नगर-जीवन और राज्याधिकार से प्राप्त विलासमय जीवन का प्रभाव भी पडा। योग्य व्यक्ति दरबार से राजानुग्रह से दूर रह गए और अयोग्य कलाकारों को राजाश्रय मिला। मुखस्तुति करनेवाले स्वार्थी दुरभिमानियों और विलासिनी नर्तकियों से दरबार भर गया। राजाओं का जीवन विशृखलमय हो गया।

राजनीतिक दुस्थिति को सुधारने के लिए महान पुरुषों का अवतरण

उस समय के संगीतज्ञ और कलाकार प्रचण्ड वाद-विवादों में पडकर किसी एक राजा के मुहताज बन गए थे। संगीत का परम ध्येय लुप्त हो गया था। अशिष्ट श्रृंगार भरी रचनाओं से राजा अथवा उसकी प्रेयसी को तृप्त करके मुहँमाँगा इनाम पाना ही उनका लक्ष्य था। ऐसी संकटावस्था से वाग्देवी को मुक्त करके उन्नत-शिखर पर ले जाने के लिए तपो-संपन्न महात्माओं का अवतरण होना चाहिए था। ऐसी स्थिति में जो महात्मा पैदा होते हैं उन्हें कारण-जन्मा कहना है।

कनक-कामाक्षी की प्रतिष्ठा

तिरु+आरु+ऊरु=तिरुवारूर-इसका अर्थ है कि 'श्रीनदीक्षेत्र'। यह पहले ही कहा गया है कि अर्चकों का वह परिवार 'कनक कामाक्षी' की प्रतिमा और उसकी वस्तु-सामग्री की रक्षा करते हुए कई प्राँतों में रहने के बाद तंजाऊर-मण्डल के तिरुवारूर पहूँचा। उस अर्चक-परिवार का गृह-स्वामी वेंकटाद्रि अय्यर थे जो गौतम गोत्रज, और बोधायनसूत्र थे। उनका पुत्र विश्वनाथ शास्त्री 25 सालों का वयस्क था। उसकी पत्नी 20 साल (बीस साल) की थी। इन अर्चकों ने तिरुवारूर के अधिष्ठात्री देवता श्रीत्यागराज के मंदिर के आवरण में प्रत्येक मण्डप बनवाया और उसमें 'कनक कामाक्षी' माता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। जब विश्वनाथशास्त्री अर्चक थे उस समय एक विचित्र घटना घटी। उस समय तक विश्वनाथशास्त्री की संतान नहीं थी।

तिरुवारूर की जिस गली में वेंकटाद्रि अय्यर रहते थे उसके पार्श्व की गली में एक निष्ठावान ब्राह्मण हर महीने के अंतिम शनिवार श्रीवेंकटाचलपति (बालाजी) की आराधना धूमधाम से करता था। ऐसे समारोह में आस-पास के गाँवों से कई ब्राह्मणों का वहाँ समावेश होता था। एक दिन आए हुए ब्राह्मणों में एक व्यक्ति पर देवता का आवाहन हुआ और आराधना के गृहस्थ से बोला - ''विश्वनाथशास्त्री की पत्नी को बुलाओ''। वहीं महिलाओं के बृन्द में बैठी हुई वह स्त्री हाथ जोडकर विनय से खडी हो गयी। उस ब्राह्मण ने जिस पर दैव का आवाहन हुआ कहा - ''अगले साल के चैत्र-मास

में कृत्तिका नक्षत्र युक्त लग्न में तुम्हे पुत्र का जन्म होगा। सौ ब्राह्मणों की समाराधना कराओ''-

दैव-वाक् सत्य निकला

विश्वनाथ की स्त्री बोली ''महराज हमें उतना सामर्थ्य कहाँ है!''

''सौ को नहीं तो पच्चीस ब्राह्मणों की समाराधना करो''- इस घटना के बाद कुछ सप्ताहों के अदंर वह स्त्री गर्भवती हुई। उस दैव-वाणी के अनुसार दूसरे साल (सन् 1662 अप्रल 26 को) चित्रभानु वत्सर कृत्तिका नक्षत्र में उसने एक बालक को जन्म दिया। उसके दादा और पिता ने उसे 'सुब्रह्मण्यं' नाम दिया। वह दुलारा बच्चा श्रीकृष्ण के जैसे मेघश्याम वर्ण में था। इसलिए सब उसे श्यामकृष्ण पुकारने लगे।

मौसे से मामा का सांगत्य

दिनो-दिन प्रवृद्ध होनेवाले बालक को देखकर माता-पिता समझने लगे कि यह भविष्य में कीर्तिवान होगा पर किस विषय में यह वे नहीं समझ पाए। उनके घर में किसी को भी संगीत की गंध तक नहीं थी। पाँचवें वर्ष में उस बालक का अक्षराभ्यास हुआ और सांप्रदायिक विद्याओं का शिक्षण देने लगे। उसका मामा बडा संगीतज्ञ न होने पर भी भक्ति के गेयों को गाने में सिद्ध-हस्त था जिसका प्रभाव उस बालक पर पडा। वह बालक अपने मामा के साथ 'भागवत-मेला' नाटक आदि में जाया करता था। मेले में आधिकतर 'चापु-ताल' में गेय गाए जाते थे। श्यामकृष्ण को भी इसी पर अनुरक्ति हुई। मामा के साहचर्य में मंदिरों के प्रांगण में गीतों की

गोष्टियों में और गाँवों के चतुष्पदों (चौकट) में गाए जानेवाले गीतों में श्यामकृष्ण भाग लेने लगा बाकी समय अपने दादा-पिता से संप्रदायिक संस्कृत, तेलुगु और द्रविड काव्यों का पठन-पाठन करता था। उसका स्वर मधुर था।

तंजाऊर में स्थिर निवास

श्यामकृष्ण के मामा की जो संगीत की रुचि थी वह श्याम-कृष्ण की माता में भी थी। श्यामकृष्ण अपनी माता से प्रेम और भक्ति अधिक थी। उसका यह मातृ-प्रेम कनक -कामाक्षी के संदर्भ में जो गीत-रचना करता था उस में प्रस्फुटित होता था। हो सकता है उसके दादा अथवा पिता ने उसे श्रीविद्या की दीक्षा दी होगी। श्यामकृष्ण अठारह वर्ष की उम्र तक अपनी माता के समक्ष चापु-ताल में 'भागवत-मेला' के गीतों को गाते हुए और सांप्रदायिक विद्या का शिक्षण पाते हुए तिरुवारूर में रहा। तदनंतर उसका परिवार मराठा के राजा तुलजाजी के आह्वान पर तंजाऊर चला गया। जब वह तिरुवारूर में रहता था तब उसी शहर में अपने जैसे भक्ति-गीतों का गायन करनेवाले रामब्रह्म के पुत्र तेरह वर्ष के बालक त्यागराज से भी परिचय हुआ ही होगा।

सन् 1781 में विश्वनाथ शास्त्री का परिवार तंजाऊर गया। तब कनक-कामाक्षी की प्रतिमा भी अपने साथ ले गये। उधर पाँच सालों तक कोंकणेश्वर के मंदिर के आवरण में एक मण्डप बनाकर उसमें देवता की पूजादि करते रहे। उनका आह्वान जिस तुलजाजी राजा ने किया था उन्होने माता की प्रतिमा की पूजा 'मूलै हनुमान' मंदिर में करने का प्रबंध किया। फिर तीन सालों बाद आजाजो मंदिर

तंजाऊर में है उसका भी निर्माण उसी राजा ने कराया था। उसमें कनक कामाक्षी प्रतिमा की प्रतिष्ठा कुम्भाभिषेक धूमधाम से कराया; अम्माजी का भोग आदि के खर्च के लिए अग्रहार के साथ सस्यक्षेत्र और 32 एकड जमीन भी पट्टा के साथ दान में दे दिया। आज भी मंदिर का वैभव ज्यों का ज्यों है।

पुस्तकों को फाड डाला

अठारह साल के श्यामकृष्ण को तंजाऊर जाने के बाद पिता के अर्चक-कार्य में सहायता देना, मंदिर संबंधी छोट-मोटे काम करना आदत बनी। एक दिन उसका पिता किसी गाँव में जाते हुए मंदिर में स्वयं अर्चना करने लगा। उस नगर के लब्ध-प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति कामाक्षी अम्मा की सेवा करने आया था। श्यामाकृष्ण ने अपने इष्ट रागों में देवी-पूजा के मन्त्रों का विशिष्ट शैली में गायन किया। उसके मधुर-गान से संतुष्ट होकर उस ने श्यामकृष्ण का दुश्शाल से सत्कार किया। यह आनंदविभोर होकर श्यामकृष्ण ने अपने मामा से कहा तो वह मात्सर्य से श्यामकृष्ण के संगीत-पुस्तक को फाड डाला। इस घटना पर उसका पिता उदास होने पर भी उसकी माता ने उसे सांत्वना दी।

जहाँ तिरुवारूर छोटा शहर था वहाँ तंजाऊर में महाराजाओं का दरबार होने के कारण इनके परिवार भी राज-वैभव का अनुभव करता था। श्यामकृष्ण जब कभी अपने पिता राजास्थान के त्योहारों उत्सवों के समय जाता था वह भी वहाँ जाकर राजा के गौरव का पात्र बनता था। राजा स्वयं संगीतज्ञ होने के कारण संगीत-गोष्टियों और संगीत-सभाओं का आयोजन करता था। उनमें श्यामकृष्ण भाग

न लेने पर भी श्रोता की तरह गान-माधुर्य पाता रहता था। उसके अंतराल में जो रुचि संगीत के प्रति थी, वह जागृत हो गयी; क्रमशः उसके हृदय के उद्गार मधुर गीतों की झरी के रूप में प्रवाहित होती थी।

संगीत स्वामी का आशीश

उन दिनों में संगीत-स्वामी नामक एक योगी और भरत-नाट्यशास्त्र का प्रवीण तंजाऊर में चातुर्मास की दीक्षा करने आया था। वह इतना संगीत के रहस्यों का ज्ञाता था कि रोज काशी के विश्वेश्वर के सान्निध्य में संगीत के साथ नर्तन करता था। उनका जन्म-स्थल आँध्रप्रांत था। वह पुण्य-क्षेत्रों की यात्रा करते हुए तंजोर में ठहरा था।

एक दिन विश्वनाथ शास्त्री के आह्वान पर उनके घर भिक्षा के लिए पधारा था। भिक्षा-स्वीकार के बाद शास्त्री ने अपने पुत्र श्यामकृष्ण का संगीत स्वामी से परिचय कराके प्रणाम कराया। श्यामकृष्ण का मुहँ और कंठस्वर का माधुर्य पहचानकर स्वामी ने यह भविष्यवाणी की कि यह युवक महान विद्वान गायक और कीर्तनकार बनेगा। शास्त्री ने स्वामी को अपने आह्वान स्वीकार कर भिक्षा लेने के लिए धन्यवाद दिया और अपने पुत्र को आशीर्वाद देने की बिनती की।

वह अपूर्व अनुग्रह था

संगीत स्वामी का अनुग्रह श्यामकृष्ण के जीवन में परिवर्तन की घटना थी। उसी सदी में उसी शहर में जो दो संगीत-विद्वान जन्मे

थे उनके भी जीवनों में ऐसी ही घटनाएँ घटी थीं। त्यागराज के जीवन चरित से ज्ञात होता है कि स्वयं महर्षि नारद ने रामकृष्णानंदयोगी के नाम से त्यागराज की युवावस्था में 'स्वरार्णव' नामक महान संगीत-ग्रंथ त्यागराज को प्रदान किया था। इसी प्रकार चिदम्बरनाथ नामक योगी ने मुत्तुस्वामी दीक्षित को संगीत-शास्त्र का उपदेश किया था। संगीतस्वामी अपने चातुर्मास-व्रत की पूर्ती के बाद भी तंजाऊर आया करता था; स्वयं श्यामकृष्ण को राग-ताल-स्वर-जति आदि के रहस्यों का बोध कराकर परिपूर्ण पण्डित बनाया।

प्रथम कीर्तन

श्यामकृष्ण का संगीत स्वामी से परिचय होने से पहले उसने संगीत की रचना की या नहीं-इसके बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलता। परंतु कुछ बडों का कथन है कि उसकी प्रथम रचना संस्कृत में थी - ''जननि नतजन परिपालिनी'' है। इस गीत और कुछ गीतों में 'श्यामकृष्ण पूजित अथवा श्यामकृष्णबहन''- जैसे नामों की छाप नहीं है। अतः ऐसा मान सकते हैं कि संगीत-स्वामी के अनुग्रह से पहले संगीतज्ञ का नाम पाने से पहले की रचनाएँ हैं।

पच्चिमरियं आदियप्पा से सान्निहित्य

श्यामकृष्ण की रचनाओं को संगीतस्वामी सुनकर संतुष्ट होते थे। उसे और कई रहस्यों का बोध कराकर तंजाऊर दरबार के विद्वान और संगीत कृति-कर्ता आदियप्पा के पास जाने को कहा। कर्नाटक संगीत के छात्र अपनी द्वितीय सत्र में साधना करनेवाले प्रसिद्ध गीत भैरवी-राग और आटतालवर्ण में रचित ''विरिबोणि'' के

आदियप्पा रचयिता थे। श्यामकृष्ण का आदियप्पय्या से परिचय घना हो गया आदियप्पय्या का वात्सल्य और स्नेह भी बढता गया। विशेष बात यह है कि वह श्यामकृष्ण को 'कामाक्षी' कह पुकारते थे। इसका कारण यह नहीं था कि वह अर्चक विश्वनाथ शास्त्री का पुत्र है अथवा वह भी अर्चक है। यह कहना उचित है कि आदियप्पय्या का यह दृढ विश्वास होगा कि 'कामाक्षी अम्मा' को श्यामकृष्णपूजिता और श्यामकृष्ण की - भगिनी के मकुट से गेय-रचना कर सकनेवाला श्यामकृष्ण अवश्य कामाक्षी-अम्मा का पुंभाव (पुरुष) रूप ही है।

चिन्ता मत करो

जब आदियप्पय्या पचास वर्ष की उम्र के थे तब श्यामकृष्ण की उम्र करीब 22 साल की थी। उन दोनों की मित्रता भी इतनी घनी थी कि दोनों साथ साथ बैठकर पान खाते थे। एक दिन गुरु और शिष्य दोनों पान खाते संगीत की बहस कर रहे थे। अचानक श्यामकृष्ण के मुँह से पान का झूठन (ताम्बूल-रस) आदियप्पय्या के उत्तरीय पर जा गिरा। श्यामकृष्ण उस से क्षमा मांगकर उस दाग को धोने के लिए पानी लाने को उठा। आदियप्पय्या बोले - ''वत्स श्याम तुम चिंता मत करो - यह तो मेरे ऊपर कामाक्षी अम्मा का अनुग्रह है। मैं इस पवित्र-क्षण के लिए कई दिनों से प्रतीक्षा करता हूँ''- इतना कहकर उस महान संगीतज्ञ ने अपने को धोने न दिया। इस घटना से यह ज्ञात होता है कि श्यामकृष्ण के मनोपटल पर जन्म से ही संगीत के रहस्यों की छाप सहज-सिद्ध थी जिसे प्रेरित करने का मौका मात्र अच्चप्पय्या को प्राप्त था। इन दोनों का गुरु-शिष्य संबंध दैव-प्रेरित समझना उचित है।

प्रभावोत्पादक स्फुरद्रूपी शयामकृष्ण

श्यामकृष्ण स्फुरद्रूपी था। तेजस्विता से विलसित देह-काँति, सोने के किनारों से सज्जित श्वेत-वस्त्र, फाल पर विभूति की रेखाएँ, कूटस्थ पर त्रिनेत्र सदृश कुंकुम बिन्दी, कंठ में स्वर्ण खचित रुद्राक्ष-माला, कर्णो को जगमगाते हुए वज्र-ताटंक, भुजाओं पर चकाचौंध-करनेवाला दुश्शाल, हाथ में स्वर्ण पुंख की लम्बी लाठी, सुंदर पादुकाएँ - ऐसी वेश-भूषा से सुसज्जित श्यामकृष्ण तंजाऊर की पुर-वीथियों में चलते समय मार्ग के दोनों ओरों घरों के लोग और पथिक अपने हाथ जोडकर अपना गौरव प्रकट करते थे। आपस में कहा करते थे कि ''गायक साम्राट पधारे हैं''- एक बार जो देखता था उसके स्फुरद्रूप को नहीं भूल पाता था। अपने पिता के बाद श्यामशास्त्री मंदिर का अर्चक बना। एक ओर मंदिर के अर्चकत्व को निभाते हुए इसकी ओर अपने संगीत कुसुमों से देवी की अर्चना करते हुए कर्णाटक-संगीत भण्डागार को अमूल्य गेयों से भरपूर किया था। इस महात्मा ने तेलुगु भाषा में अधिक संख्या में, संस्कृत और तमिल में अल्प-मात्रा में गेय-रचना की है। उनकी रचनाओं की सही संख्या न मिलने पर भी अब प्रचल्न में करीब तीन सौ रचनाएँ उपलब्ध हैं।

संगीत के तीन घनापाटी विद्वान

कनक-कामाक्षी की अर्चना के साथ संगीत कृति-रचना भी दक्षता से करता था। वह श्रीविद्योपासक था और देवी का परम प्रिय भक्त था। देवी के समक्ष रागालापन करते करते देवी-साक्षात्कार से

तन्मय हो श्यामशास्त्री माता-पुत्र के वार्तालाप की शैली में परढ रचते हैं। उन दिनों में कर्णाटक संगीत को विनूतन शैली से शोभित करनेवाले महात्मा त्यागराज और मुत्तुस्वामी दीक्षित दोनों के साथ श्याम शास्त्री को अद्वितीय आदर प्राप्त हुआ था। अतः ये तीनों संगीत के त्रिमूर्ति माने जाते हैं।

तीनों तीन मणियाँ हैं

ये तीनों भी तिरुवारूर के ही हैं और तीनों समकालिक भी हैं। सर्वकला समन्वित रस-स्फूर्ति, भाषा का शिल्प-विन्यास, मृदु कवि-कल्पना में विश्व-विख्यात इन तीनों का संगीत-क्षेत्र में ऊँचा-स्थान है। इन तीनों को संगीत रत्न-त्रय नाम से इसलिए अभिहित किया गया है कि इन तीनों ने एक ही रागालापन से भिन्न रूपों का साक्षात्कार करा सकते हैं। उन गीतों की रसानुभूति से आत्मा को उत्तेजित करने की क्षमता उन में है। तीनों भी वेदशास्त्रों के पारंगत, मन्त्रशास्त्र-द्रष्टा और वर-प्रसादित हैं। तीनों को महान योगियों की गुरुता प्राप्त हुई। त्यागराज की शैली द्राक्षापाक के है। श्यामशास्त्री की शैली कदली-पाक और दीक्षित की नारिकेल-पाक है। त्यागराज की शैली गोदावरी जैसे विस्तृत है, शास्त्री की शैली कृष्णा नदी की तरह गंभीर होती है तो दीक्षित की शैली उन दोनों के मिश्रण से कावेरी नदी जैसी मंदगमना है। आधुनिक कर्णाटक संगीत के ये तीनों पथ-प्रदर्शक हैं। तीनों ने गेय, नवरत्न मालिका पंचरत्न आदि की रचना की है। प्रसिद्ध क्षेत्रों में देवता-प्रतिमाओं की आराधना करके तीनों आध्यात्मिक शिखरों की पराकाष्ठा तक पहूँचे तपः-संपन्न हैं।

गेय का विकास

अन्नमाचार्य जी ने बालाजी की स्तुति में जिन कीर्तनों का प्रारंभ-किया वह दो शाखाओं में विकसित हुआ है - श्रृंगाररसात्मक गीत और आध्यात्मिक गीत। क्षेत्रय्या के पदों में मधुर-भक्ति प्रधान श्रृंगारात्मक पद यक्षगान के रागों से नाटक के अभिनय की सानुकूलता और कविता के लालित्य को अपनाकर विकासत हुए। इन संगीत त्रिमूर्तियों की रचनाओं में साहित्य-शैली की प्रौढता राग-रागिणियों का विस्तार, गान की गुंभता और स्वर-कल्पना उत्कृष्ट है।

ललित-पद-विन्यास

सर्वोन्नत लक्ष्य प्राप्ति के लिए रसमय संगीत में रागों का संचय प्रधान है। साहित्य और पदबंध स्वर-कल्पना अनुकूल राग को स्पष्ट करने के लिए सहायक मात्र हैं। माना जाता है कि अर्थ की गंभीरता संगीत-झरी को आगे बढने नहीं देती। इस दृष्टि से तुलना की जाय तो तीनों में श्यामशास्त्री उदात्त एवं पद-लालित्य से अजरामर है। उसकी कृतियों की अपनी प्राप्त शैली किसी का अनुकरण कदापि नहीं। उसके गेयों में चापु-ताल अपूर्व लय गतियों से उसके कंठ में नाचता है।

अब तो भोजन दुपहर को ही मिलेगा

श्यामशास्त्री का जीवन तंजाऊर के महाराजा से दान में प्राप्त विशाल सस्यक्षेत्र, इनामदारी जमीन और अर्चकत्व का अधिकार इन के कारण सुखमय है। उसके जीवन में सुख-समृद्धि थी और

उसे धनार्जन के लिए संगीत का सहारा नहीं लेना पडा। शास्त्री कभी कभी तिरुवारूर जाकर प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्रीत्यागराज से मिलकर संगीत-चर्चा में इतना मग्न हो जाते थे कि उन्हें समय का ख्याल नहीं होता था। इन दोनों को देखकर वहाँ के शिष्य कहते थे कि दोनों आचार्य चर्चा में डूब गए हैं और हमारा भोजन दुपहर को होगा। इसी प्रकार शास्त्री श्रीविद्योपासक मुत्तुस्वामी दीक्षित से भी मिला करते थे।

असमान प्रतिभा-संपन्न गायक

श्यामशास्त्री की कृतियों का गायन उनकी लय-प्रसार-गति की प्रौढता के कारण वे ही कर सकते हैं जो कर्णाटक संगीत की नित्य साधना की पराकाष्ठा पर पहूँचे हों। जहाँ त्यागराज के गीत कोई भी सुलभ रीति से गा सकते हैं वहाँ इसके गीत को गंभीरसाधना से ही गा सकते हैं। 'मांजि' 'कलगड' चिंतामणि' जैसे अपूर्व रागों में की गयी रचनाएँ उसकी असीम प्रतिभा के सूचक हैं।

यह विशेषता है कि शास्त्री ने संस्कृत और तेलुगु में एक कीर्तन की रचना की, जिस में गात्र में अथवा वायिद्य पर गाते समय दोनों भाषाओं का माधुर्य एक साथ पा सकते हैं।

शास्त्री के सब पद भाषा कोई भी हो तेलुगु तमिल या सस्कृत-इतिवृत्त देवी के प्रति अनन्य-भक्ति ही है। उसके कीर्तनों का मकुट श्यामकृष्ण-पूजित अथवा 'श्यामकृष्ण भगिनी' होता है। इसके दो कारण हो सकते हैं! एक तो शास्त्री महान दार्शनिक भी होने कारण परा-शक्ति को भगवान विष्णु की भगिनी के रूप में स्तुति करता हो;

दूसरा कारण वह कामाक्षी अम्मा उनके घर की देवी होने के कारण 'भगिनी' भी है। भैरवी स्वर-जति और ललितराग कीर्तन के आठों चरणों में संगीत के 'स.रि.ग.म.प.द.नि.स' के आठों आरोहण स्वरों में एक से प्रारंभ होता है। अधिकाधिक पद आनंद-भैरवी में होने का कारण कहा जाता है कि उन्हें वह राग बहुत इष्ट था। कंचि-वरदराजस्वामी को नायक के रूप में नायिका-भाव से आह्वान करने का पद तान-वर्ण और भैरवी राग में प्रसिद्ध है। उससे रची गयी प्रसिद्ध 'कृति' की स्वर-कल्पना उसके शिष्य ने की है। 'पालन करे हे कामाक्षी' -इस कृति को मध्यमावति राग केलिए उसके पौत्र अन्नाशास्त्री ने स्वर-साहित्य की रचना की थी।

मधुरा में गौरव

एक बार उसने अपने शिष्य अलसूर कृष्णय्या के साथ मधुरा की यात्रा 'मीनाक्षी' देवी के दर्शन के लिए की। तब नवरत्न-मालिका नामक नौ कृतियों को 'शंकराभरण' में और कुछ कृतियों को प्रसिद्ध राग-रागिणियों में गाया। उस समय आलय के अर्चक देवी-उपासक का जो सांप्रदायिक सम्मान करते हैं वह इन्हें मिला।

तंजाऊर के गौरव की रक्षा करने का समय आया

जब श्यामशास्त्री प्रौढ वयस्क हो गया था तब तंजावूर का शासक तुलजाजी के बाद शरभोजी राजा हो गया था। इसी राजा ने आज भी प्रसिद्ध सरस्वती-महल के पुस्तकभण्डार की श्रीवृद्धि की है। इस राजा के दरबार में यक्षगानों, संगीत-समारोहों, नृत्यों आदि का पोषण था। शास्त्री का अपने अर्चकत्व और संगीत-रचना के सिवा राज-दरबार से सान्निहित्य नहीं था।

एक बार बोब्बिलि केशवय्या नामक उद्दण्ड संगीत विद्वान उत्तरभारत से तंजावूर आया जिसने अपने रास्ते में कई स्थानों पर अपनी प्रकर्षता और वादपटिमा से कई विद्वानों को हराया था। गजारोहण, शिष्यगण उसकी जय-पत्रिकाएँ थीं और तांजोर के दरबारी विद्वानों को सामना करने के लिए ललकारना-लक्ष्य था तंजाऊर के पंडितों में भय होने लगा। उन्होने सोच विचार कर यह निर्णय किया कि केशवय्या का मुँह-फट जवाब देनेवाला एक मात्र श्यामशास्त्री है। वे राजा का अनुमति से शास्त्री के घर गए। शास्त्री से अनुनय किया कि तंजावूर के गौरव की रक्षा करने का समय आया है। राजा के दरबार में उस केशवय्या ने सामना करने के लिए आह्वानित किया।

श्यामशास्त्री इस के लिए सम्मत हुआ। दोनों में स्पर्धा प्रारंभ-होने के पहले दिन सारे शहर में यह बात दावानल भाँति फैल गयी। विद्वानों के साथ साधारण जनता भी इसे देखने ललायत थी। तंजाऊर का गौरव श्यामशास्त्री से बचाया जायेगा-इस विश्वास से राजा ने सब प्रबंध किए। श्यामशास्त्री सम्मत तो हुआ पर उस वैरी की जैत्र-यात्रा की लम्बी सूची देखकर मन में किंचित् आंदोलित हुआ। सन्ध्या की अर्चना के समय श्रद्धा और भक्ति से कामाक्षी देवी से विनती करने लगा। चिंतामणि राग में ''हे देवी समय आसन्न हुआ मेरी रक्षा करने का''- प्रार्थना के अंत में देवी-कटाक्ष के शुभ शकुन फूलों के गिरने से हुआ और शास्त्री को अभय प्राप्त हुआ। विजयी होने का दृढ विश्वास हो गया।

आप और कुछ कहेंगे ?

दूसरे दिन नियमित समय पर शास्त्री जगमगाते दुश्शाल ओढकर कूटस्थ में लाल बिंदु से राज-सभा में पधारा। वहाँ की जनता 'जयनाद' करने लगी। ऊंचे चबूतरे पर केशवय्या और श्यामशास्त्री आमने-सामने बैठ गए। एक ओर विजेता के मूल्यवान उपहार रखे गए थे। केशवय्या ने श्रुति संजोकर रागालापन प्रारंभ का संकेत किया और विभिन्न ताल-जति-गतियों में तान का गायन किया; सालों भर की हुई साधना की पराकाष्ठा थी। केशवय्या तान को सुनाने के बाद शास्त्री ने पूछा - ''और कुछ गाएंगे?''। केशवय्या ने अपना सिर बाए से दाहिनी और हिलाया। शास्त्री तान और गतियों में विशिष्ट शैली का प्रयोग करने लगा जिस से केशवय्या अपरिचित था।

सिर हिलए बिना तानं गाइए

श्यामशास्त्री ने केशवय्या से पूछा-आप शास्त्रविधियों के अनुसार ही गान करते हैं न?

केशवय्या ने 'हाँ' कहा।

''सिर हिलए बिना तानं का गान कीजिए''

तानं के गाते समय अपना सिर और अंगो का हिलाना शास्त्र-दोष माना जाता है। बेचारा केशवय्या अपनी पुरानी आदत से सिर हिलाने लगा। भारी सभा में सब हंसने लगे। उसका अपमान हो गया। केशवय्या को भी प्रश्न करने का अवसर दिया गया। उसने

सिंहनंदनताल में पल्लवि का गान करके उसी में श्यामशास्त्री से गाने को कहा। शास्त्री ने इसे इतनी सरलता से गायी कि मानों उसे वह कई सालों से साधना करता हो। अपनी बारी फिर आते ही शास्त्री ने 19-1/2 मात्राओं और एक आवर्त में 79 अक्षरों सहित शरभनंदनताल में गाया और केशवय्या से भी गाने को कहा। शरभ आठ-पैरवाला पक्षी है जिसका सिर सिंह जैसे होता है; इसको पौराणिक कथाओं में मंदिरों के शिल्प में देख सकते हैं। यह ऐसा ताल है जिसकी अविश्रान्त साधना से श्यामशास्त्री ने अपनाया था। इस में केशवय्या की साधना नहीं थी। केशवय्या ने इस प्रकार अपनी हार मान ली। केशवय्या के दांत खट्टे करने से सभा हर्ष नादों से गूंज उठी। राजा ने शास्त्री की प्रशंसा करके सम्मान किया।

इसी प्रकार नाग-पट्टणम अप्पकुट्टि नामक घमंडी संगीतज्ञ को हराकर उसे सन्यास ले कर चले जाने के लिए कहा था।

पत्नी की मृत्यु के बाद पाँच दिनों को

श्यामशास्त्री के पुत्रों में सुब्बाराय प्रमुख है जो त्यागराज के प्रिय शिष्यों में एक है। त्यागराज और मुत्तुस्वामी दीक्षित जैसे शास्त्री का कोई शिष्य-बृन्द नहीं था। इस कारण उन दोनों के कीर्तनों का जन साधारण में जितना प्राचुर्य हो गया उतना शास्त्री के नहीं।

श्यामशास्त्री की पत्नी पतिभक्ति परायणी ही नहीं अपितु पति के सम्मान और प्रतिष्ठा को समझकर गर्व अनुभव करती थी। तथा श्रद्धा से गौरव देती थी। शास्त्री ने यह भविष्यवाणी कही थी कि

अपनी पत्नी की मृत्यु के पाँच दिन बाद अपना भी जीवन परिसमाप्त होगा। उसकी आयु 65 साल की थी। सन् ई.1827 में मकरमास के शुक्ल दशमी फरवरी छटी तारीख को उनकी भौतिक लीला समाप्त हुई वे अपनी आराध्य कनक-कामाक्षी में लीन हो गए।

* * *